जैन राजनीति

□ **डॉ० गोकुलचन्द्र जैन** एम० ए०, पी-एच० डी०

□

प्राचीन भारतीय राजनीतिशास्त्र का जो स्वरूप जैन वाङ्मय में उपलब्ध होता है, उससे निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

(१) **भोगभूमि और यौगलिक व्यवस्था**—मानव सभ्यता के आदिकाल में 'यौगलिक व्यवस्था' थी। एक नर और एक नारी। ऐसे अनेक युगल थे। प्रत्येक युगल नये युगल को जन्म देता और यह यौगलिक-प्रक्रिया चलती जाती। वृक्षों से उनके जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी। ये वृक्ष 'कल्पवृक्ष' थे। भोजन, वस्त्र और आवास भिन्न-भिन्न प्रकार के कल्पवृक्षों से सम्पन्न होते। कल्पवृक्ष इतने थे कि आवश्यकता-पूर्ति के लिए संघर्ष न था। आवश्यकताएँ भी कम थीं। सब अपने में मस्त। इसीलिए शास्त्रकारों ने उस युग को 'भोगभूमि' कहा है। उस समय परिवार नहीं थे। ग्राम, नगर आदि भी न थे। तब की राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति इतनी ही थी।[१]

जैन साहित्य में इस 'यौगलिक व्यवस्था' का जो विस्तृत विवरण मिलता है, उसके ये सूत्र हैं। मेरी दृष्टि से शास्त्रकारों ने अपने-अपने समय तक विकसित तथा परिकल्पित सभ्यता के विवरण भी इस वर्णन के साथ जोड़कर इसे अतिरंजित और अविश्वसनीय-सा बना दिया है। इसीलिए इसका उपयोग न तो राजनीतिशास्त्र के इतिहास में किया जाता है और न ही मानव-सभ्यता के इतिहास में। इन सूत्रों को आधुनिक अनुसन्धान सन्दर्भों में व्याख्यायित करना अपेक्षित है।

(२) **कुलकरों की व्यवस्था नीति**—युगल या 'यौगलिक व्यवस्था' के बाद जो व्यवस्था विकसित हुई, उसे शास्त्रकारों ने 'कुलकर व्यवस्था' कहा है। कई युगल साथ रहने लगे। कुल बने। सन्तति बढ़ी। कल्पवृक्षों से जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति में कमी हुई। कुलकरों ने जीवन-यात्रा को आगे बढ़ाने के नये-नये रास्ते खोजे। प्रकृति के स्वरूप को समझा। हिंसक पशुओं से रक्षा करने के उपाय निकाले। संघर्ष रोकने के लिए कल्पवृक्षों की सीमाएँ बाँधी। पशुपालन और उनका उपयोग करना आरम्भ किया। संघर्ष और अपराध के लिए दण्ड का स्वरूप-निर्धारण किया। सन्तान का पालन-पोषण आरम्भ किया। जीवन सुरक्षित हो चला। वृक्ष-पादपों और धान्यों को उपजाने का मार्ग निकाला गया। कुलकर इस व्यवस्था का केन्द्र होता था। मार्ग-दर्शन, व्यवस्था और अनुशासन की धुरी कुलकर था।[२]

यह 'कुलकर व्यवस्था' विकसित होते-होते राजतन्त्र बन गयी। इस विकासयात्रा में हजारों-हजार वर्ष लगे। शास्त्रकारों ने 'कुलकर व्यवस्था' का विस्तृत वर्णन किया है। यौगलिक व्यवस्था की तरह यह वर्णन भी अतिरंजित और अविश्वसनीय-सा लगता है, किन्तु निःसन्देह इसमें सांस्कृतिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री विद्यमान है।

सन्तति के जीवन का उपाय जानने के कारण 'कुलकर' को 'मनु' भी कहा गया है। कुल के रूप में संगठित होकर रहने की प्रेरणा देने के कारण ये 'कुलकर' कहलाते थे। कुल को धारण करने के कारण 'कुलधर' और युग के आदि में होने के कारण इन्हें 'युगादि पुरुष' भी कहा जाता था।[३]

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने आदिपुराण के आधार पर 'कुलकर संस्था' के निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं[४]—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'कुलकर संस्था' एक प्रकार की समाज व्यवस्था को सम्पादित करने वाली संस्था है। कुलकर जीवन-मूल्यों को नियमबद्ध कर एकता और नियमितता प्रदान करते हैं। अपराध या भूलों का परिमार्जन दण्ड-व्यवस्था के बिना सम्भव नहीं है। अतः कार्यों और क्रिया-व्यापारों को नियन्त्रित करने के लिए अनुशासन की स्थापना की जाती है। इस 'कुलकर संस्था' का विकसित रूप ही राज्य संस्था है, जिसमें समाज और राजनीति दोनों के तत्त्व वर्तमान हैं। आदि-पुराण के अनुसार कुलकर-संस्था द्वारा सामान्यतः निम्नांकित कार्यों का सम्पादन हुआ है—

१. समाज के सदस्यों के बीच सम्बन्धों का संस्थापन।
२. सम्बन्धों की अवहेलना करने वालों के लिए दण्ड-व्यवस्था का निर्धारण।
३. स्वाभाविक व्यवहारों के सम्पादनार्थ कार्य-प्रणाली का प्रतिपादन।
४. आजीविका, रीति-रिवाज एवं सामाजिक अर्हाओं की व्याख्या का निरूपण।
५. सांस्कृतिक उपकरणों द्वारा स्वस्थ वैयक्तिक जीवन-निर्माण के साथ सामाजिक जीवन में शान्ति और सन्तुलन स्थापनार्थ विषय सुख की अवधारणाओं में परिवर्तन।
६. समाज संगठन एवं विभिन्न प्रवृत्तियों का स्थापन।
७. सामूहिक क्रियाओं का नियन्त्रण एवं समाजहित प्रतिपादन।

डॉ० शास्त्री ने आगे लिखा है कि "कुलकर एक सामाजिक संस्था है। वर्तमान में परिवार, क्लब, चर्च आदि को जिस प्रकार संस्थाओं की संज्ञा प्राप्त है, उसी प्रकार कुलकर-संस्था को भी।"[५]

डॉ० शास्त्री के इस निष्कर्ष से सहमत होने की अपेक्षा मैं उनके इस कथन से सहमत हो सकता हूँ कि "इस प्राचीन संस्था का विकसित रूप ही राज्य, स्वायत्तशासन, पंचायत एवं नगरपालिका आदि संस्थाएँ हैं।"[६] वास्तव में कुलकर व्यवस्था सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक व्यवस्था का सम्मिलित रूप है। सभ्यता के प्रारम्भिक युग में इससे भिन्न रूप की सम्भावना करना भी उचित नहीं होगा।

कुलकर व्यवस्था की तुलना मन्वन्तर-संस्था से की जाती है। कुलकरों को भी जिनसेन ने मनु कहा है। संस्था और कार्यों आदि में भी समानता है।[७]

कुलकरों की दण्ड-नीति—कुलकरों की दण्डनीति का जो विवरण प्राप्त होता है उसके अनुसार उनकी दण्डनीति का विकास इस प्रकार है[८]—

१. **'हा'कार**—जब कोई मर्यादा का उल्लंघन करता तो उसे 'हाकार' का दण्ड दिया जाता है। अर्थात् "हा! तूने यह क्या किया?" ऐसा कहकर अपराधी की निन्दा की जाती।

२. **'मा'कार**—इस दण्डनीति के अन्तर्गत अपराधी को भविष्य के लिए चेतावनी भी दी जाती थी कि फिर भविष्य में ऐसा नहीं करना।

३. **'धिक्'कार**—इसके अन्तर्गत अपराधी की तीव्र विगर्हणा की जाती थी।

जिनसेन ने लिखा है कि पहले मात्र 'हाकार' का प्रयोग होता था। उसके बाद 'हाकार' और 'माकार' का प्रयोग किया जाने लगा और उसके भी बाद 'हाकार', 'माकार' और 'धिक्कार' का प्रयोग आरंभ हुआ।[९]

'कुलकर व्यवस्था' के विवरण में बताया गया है कि १४ कुलकर एक लम्बी कालावधि में क्रमशः हुए। कहीं-कहीं संख्या में अन्तर है, किन्तु क्रमशः हुए, इस विषय में सभी शास्त्रकार एकमत हैं।

जिस समय 'कुल' बने और कुलकर व्यवस्था आरंभ हुई, या जब तक यह व्यवस्था चलती रही, तब तक सारा मानव समाज एक कुल के रूप में संगठित था और उसका प्रमुख कुलकर कहलाता था तथा यह व्यवस्था क्रमशः १४ कुलकरों की दीर्घावधि तक चलती रही, ऐसा स्वीकार करने में कठिनाई है। ऐसा प्रतीत होता है कि यौगलिक व्यवस्था के बाद मानव समूह छोटे-छोटे अनेक कुलों में संगठित हो गया था और उन कुलों के मुखिया कुलकर कहलाते थे।

कुलकर कौन हो सकता था? वय या शक्ति, किसके आधार पर उसका चुनाव होता था, इसकी पकड़ का कोई सूत्र स्पष्ट रूप से ग्रन्थों के वर्णन में नहीं मिलता। उनके अनुसार तो कुलकर जन्म से ही कुलकर होता था।

संभवतया मुख्य रूप से वयोवृद्ध व्यक्ति ही अपने अनुभव-ज्ञान के आधिक्य के कारण अपने कुल का प्रमुख होता था। किसी विशेष स्थिति में कुल के विशेष शक्तिसम्पन्न व्यक्ति को भी कुल का प्रमुख स्वीकार कर लिया जाता होगा। वही कुलकर कहलाता था। कुल के भरण-पोषण, संरक्षण, अनुशासन आदि के लिए भी वह उत्तरदायी होता होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुलकर व्यवस्था के सन्दर्भ में एक अन्य जिस बात पर ध्यान दिया जाता है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। कुलकरों के जितने भी नाम आगम साहित्य या अन्य साहित्य में प्राप्त होते हैं, वे सभी पुरुषों के हैं। सन्तति के प्रजनन, पोषण और संरक्षण में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका होते हुए भी कुलकरों में एक भी स्त्री का नाम न होना, विचारणीय है।

कुलकर संस्था का अध्ययन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक किंवा समग्र सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से किया जाना आवश्यक है।

(३) **ऋषभदेव का राजतन्त्र**—कुलकर व्यवस्था के बाद जैन वाङ्मय में राजनीति का जो स्वरूप प्राप्त होता है, वह स्पष्ट रूप से राजतन्त्र का है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पिता नाभिराय अंतिम कुलकर थे। उनके नाम के साथ जुड़ा 'राय' शब्द संभवतया उनके राजा होने का इंगित है। वे उस राज्य की नाभि (केन्द्र) थे।

नाभिराय ने अपने बाद अपने पुत्र ऋषभ को अपना उत्तराधिकारी बनाया। विधिवत् अभिषिक्त होने के पूर्व से ही नाभिराय अनेक मामलों को ऋषभ के पास भेज देते थे।[10] जब उन्होंने सारी व्यवस्था सँभाल ली तथा उनका प्रभाव धरती और आकाश में फैल गया तो सुरों ने आकर उन्हें अधिराज पद पर अभिषिक्त किया।[11] नाभिराज ने अपना मुकुट उतारकर अपने ही हाथ से अपने बेटे को पहना दिया।[12]

ऋषभ ने ग्राम, नगर, खेट, कर्वट आदि की व्यवस्था की तथा कृषि, वाणिज्य आदि का सम्यक् विनियोग किया। बाद के शास्त्रकारों ने ऋषभ के युग की राजनीति का जो वर्णन किया है, उसे उस युग का नहीं माना जा सकता। उस प्रकार की शासन व्यवस्था का विकास बाद में हुआ।

ऋषभ की शासन व्यवस्था का विवरण आचार्य हस्तिमल जी ने आवश्यकनिर्युक्ति के आधार पर इस प्रकार दिया है[13]—

"राज्याभिषेक के पश्चात् ऋषभदेव ने राज्य की सुव्यवस्था और विकास के लिए प्रथम आरक्षक दल की स्थापना की। उसके अधिकारी 'उग्र' नाम से कहे जाने लगे। फिर राजकीय व्यवस्था में परामर्श के लिए मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया गया, जिसके अधिकारी को 'भोग' नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। इसके अतिरिक्त एक परामर्श मण्डल की स्थापना की गयी जो सम्राट् के सन्निकट रहकर उन्हें समय-समय पर परामर्श देता रहे। परामर्श मण्डल के सदस्यों को 'राजन्य' और सामान्य कर्मचारियों को 'क्षत्रिय' नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। विरोधी तत्त्वों से राज्य की रक्षा करने तथा दुष्टों को दण्डित करने के लिए उन्होंने चार प्रकार की सेना और सेनापतियों की व्यवस्था की। अपराधी की खोज एवं अपराध-निरोध के लिए साम, दाम, दण्ड और भेदनीति तथा निम्नलिखित चार प्रकार की दण्डव्यवस्था का भी नियोजन किया—

१. **परिभाषण**—अपराधी को कुछ समय के लिए आक्रोशपूर्ण शब्दों से दण्डित करना।
२. **मण्डली बन्ध**—अपराधी को कुछ समय के लिए सीमित क्षेत्र—मंडल में रोके रहना।
३. **चारक बन्ध**—बन्दीगृह जैसे किसी एक स्थान में अपराधी को बन्द रखना।
४. **छवि-विच्छेद**—अपराधी के हाथ-पैर जैसे शरीर के किसी अंग-उपांग का छेदन करना।

उपर्युक्त चार नीतियों के सम्बन्ध में कुछ आचार्यों का मत है कि अंतिम दो नीतियाँ भरत के समय से प्रचलित हुई थीं परन्तु भद्रबाहु के मन्तव्यानुसार बन्ध और घात नीति भी ऋषभदेव के समय में ही प्रचलित हो गयी थी।"[14]

आवश्यकनिर्युक्ति के इस विवरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार के पूर्व राजनीति शास्त्र का जो विकास हो चुका था, उसकी भी बहुत सी बातों को इसमें समाहित कर लिया गया है।

ऋषभदेव की शासन व्यवस्था में राजतंत्र का जो पूर्वरूप प्राप्त होता है, उससे लगता है कि यद्यपि स्वायत्त-शासन या स्टेट्स की तरह के शासन की भी शुरुआत उस समय हो गयी थी। केन्द्रीय शासन सर्वोच्च था और उसी की रीति-नीति के अनुसार सभी प्रशासनिक इकाइयाँ कार्य करती थीं।

ऋषभ तीर्थंकर के युग के लोगों को 'ऋजुजड़'[15] कहा गया। इससे ज्ञात होता है कि मानव सभ्यता के विकास के उस प्रथम चरण में अपराधवृत्ति अत्यल्प थी। जीवन की आवश्यकताएँ सीमित होने के कारण संघर्ष भी कम था और जिज्ञासाओं के समाधानों के सामने प्रश्न चिन्ह लगाने की प्रवृत्ति न होने के कारण विरोधजन्य कलह भी नहीं था। इसीलिए राजनीति सरल और शासन मृदु था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) **भारत का सार्वभौमिक राज्य**—ऋषभ के एक सौ पुत्र थे। संन्यस्त होने के पूर्व उन्होंने सभी को एक-एक प्रशासनिक इकाई सौंपी। जिन्हें संन्यास मार्ग रुचिकर लगा, वे तो अपने पिता के ही साथ संन्यस्त हो गये, शेष ने अपना-अपना शासन सँभाला।

ऋषभ के पुत्रों में भरत ज्येष्ठ थे। उनकी दूसरी माँ के पुत्रों में बाहुबलि सबसे बड़े थे। पिता के बाद भरत के मन में यह विकल्प आया कि पिता की तरह सत्ता का केन्द्र वही है। जो उसे होना चाहिए। अन्य सभी को उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार करनी चाहिए।

भरत ने अपनी इस प्रभुसत्ता को स्थापित और संपुष्ट करने के उद्देश्य से चतुर्दिक भ्रमण किया। उनकी यह यात्रा 'दिग्विजय' मानी गयी। बाहुबलि को छोड़कर सभी ने भरत की संप्रभुता स्वीकार कर ली। बाहुबलि ने कहा—'पिता ने हमें समान अधिकार और स्वातन्त्र्य दिया है। हम किसी के आधीन नहीं हो सकते।' भरत सत्ता के दर्प में था। उसने बाहुबलि को युद्ध के लिए ललकारा। तीन प्रकार के निर्णायक युद्ध हुए—जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध। बाहुबलि तीनों में विजयी हुए। सत्ता के लिए भरत हिंसा पर उतारू हो गया। उसने बाहुबलि पर चक्र फेंका। बाहुबलि उससे घायल नहीं हुए पर उनका मन घायल हो गया। उन्होंने सत्ता के लिए हिंसा के प्रतिरोध में अपना सर्वस्व छोड़ दिया और संन्यस्त हो गये। भरत चक्रवर्ती शासक बन गया। शास्त्रों में यह प्रसंग बहुत विस्तार के साथ वर्णित है।[१६]

भरत-बाहुबलि युद्ध, जैन राजनीति के इतिहास में सत्ता के लिए संघर्ष और संघर्ष में पराजय होने पर अनीति तथा हिंसा का आश्रय लेने की सर्वप्रथम घटना है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भरत के समय तक राजतन्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था। राज्य, राजा और राजनीति के स्वरूप का निर्धारण हो चुका था। आदिपुराण के ४२वें पर्व में राजनीति का जो विस्तृत वर्णन है, उसे पूर्ण-रूप से भरत के युग का तो नहीं माना जा सकता, किन्तु इतना अवश्य है कि उसके आधार पर भरत की नीति का एक सामान्य चित्र अवश्य अंकित किया जा सकता है। यह राजतन्त्र दीर्घकाल तक चला।

(५) **जैन राजनीति और गणतन्त्र**—जैन राजनीति में 'गणतन्त्र' के उल्लेख सम्पूर्ण भारतीय राजनीति शास्त्र के इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के युग में अर्थात् ईसा पूर्व छठी शती में वैशाली में एक समृद्ध गणतन्त्र था। पाली दीघनिकाय में इसका एक स्पष्ट चित्र उपलब्ध होता है।

महात्मा बुद्ध से यह पूछा गया कि 'वैशाली पर विजय किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है।'

उत्तर में बुद्ध ने कहा 'जब तक इस गणतन्त्र के सदस्य सात बातों को मानते रहेंगे, तब तक वैशाली विजित नहीं हो सकती।' वे सात बातें इस प्रकार हैं[१७]—

(१) सम्मति के लिए सभा में एकत्र होना।
(२) एक होकर बैठना, एक होकर उठना और एक होकर करणीय कार्यों को करना।
(३) अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त न मानना तथा प्राचीन वज्जि धर्म का अनुसरण करना।
(४) अपने वयोवृद्धों के प्रति आदरभाव रखना।
(५) स्त्री वर्ग के सम्मान की रक्षा करना।
(६) अपने चैत्यों की पूजा करना।
(७) अर्हतों के ठहरने का सुविधाजनक तथा सुरक्षित प्रबन्ध करना।

वैशाली गणतन्त्र में वज्जियों और लिच्छवियों के नौ राज्य शामिल थे। इसको संचालन करने वाली सभा 'वज्जियान राजसंघ' कहलाती थी। चेटक इस गणतन्त्र के अध्यक्ष थे।

मगध का शक्तिशाली राजतन्त्र वैशाली के सन्निकट होने के बावजूद भी वैशाली का प्रभाव और प्रतिष्ठा अत्यधिक थी।

वैशाली के अतिरिक्त उस समय कतिपय और भी गणराज्य थे। शाक्य गणराज्य के अध्यक्ष शुद्धोधन थे। इसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। मल्लों की गणराज्य की राजधानी कुशीनारा और पावा थी। कतिपय अन्य छोटे-छोटे गणराज्य भी थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणराज्यों का वैशिष्ट्य उस संघ में शामिल राज्यों के स्वातन्त्र्य, निर्णयों में विचार-विनिमय और एक दूसरे के प्रति मैत्री और आदर भाव में था।

(६) **राजनीति पर धार्मिक और दार्शनिक चिन्तन का प्रभाव**—महावीर के युग तक भोगभूमि की 'यौगलिक व्यवस्था' से लेकर 'गणराज्य' तक की राजनीति का जो विकास हुआ था, उसमें धार्मिक और दार्शनिक चिन्तन का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। तीर्थंकरों ने प्रत्येक जीव की स्वतन्त्र सत्ता का प्रतिपादन करके व्यक्ति स्वातन्त्र्य को जो प्रतिष्ठा दी थी, उससे 'श्रावकाचार' की एक विशेष आचार-संहिता विकसित करने में चिन्तकों को एक नयी दृष्टि प्राप्त हुई।

'अनेकान्त' के चिन्तन ने एक-दूसरे के विचारों को आदर देने तथा स्याद्वाद ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के नियमन का मार्ग प्रशस्त किया।

पार्श्वनाथ के 'चाउज्जाम संवर' तथा महावीर के 'पंच व्रतों' ने समाज में सुव्यवस्था और समान वितरण की व्यवस्था को बल दिया। शासक और शासित दोनों को अपनी मर्यादाओं का बोध कराया। विभिन्न सन्दर्भों में आये उल्लेख राजनीति के सन्दर्भ में भी महत्वपूर्ण हैं। दशवैकालिक में एक स्थान पर आया है—

"जहा दुम्मस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रसं।
न य पुप्फं किलामेइ सो य पीणेइ अप्पयं॥ १/२॥"

जिस प्रकार भ्रमर फूलों से रस ग्रहण करके अपना निर्वाह करता है, किन्तु फूल को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचने देता, उसी प्रकार शासन को प्रजा से अपना भागधेय ग्रहण करना चाहिए।

जैन राजनीति में हिंसा का प्रश्रय लेने की बात कहीं भी नहीं कही गयी। अनीति का आश्रय लेने की बात भी अनुमत नहीं है। भरत के इन दोनों कार्यों की शास्त्रकारों ने विगर्हणा की है।

(७) **राजनीति विषयक जैन साहित्य**—ऊपर हमने जैन वाङ्मय में उपलब्ध उन सन्दर्भों की चर्चा की है जिनका अध्ययन-अनुसन्धान 'जैन राजनीति तथा प्राचीन भारत के राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास' की दृष्टि से किया जाना चाहिए।

जिनसेन के आदिपुराण तथा अन्य पुराण और चरित साहित्य में राजनीतिशास्त्र की जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसे मात्र जैन राजनीति कहना उपयुक्त न होगा, सम्पूर्ण भारतीय सन्दर्भ में उसे जाँचा-परखा जाना चाहिए।

राजनीति पर इस समय जैनाचार्यों की स्वतन्त्र रचनाएँ मात्र दो उपलब्ध हैं। सोमदेव सूरि (१०वीं शती) का 'नीतिवाक्यामृत' और हेमचन्द्र सूरि (११वीं शति) की 'लघु-अर्हन्नीति' या 'अर्हन्नीतिसार'।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बाद भारतीय राजनीतिशास्त्र पर संभवतया एकमात्र सोमदेव का नीतिवाक्यामृत अद्वितीय ग्रन्थ है। पिछले दो दशकों में इस ग्रन्थ पर दो शोध प्रबन्ध लिखे गये—

१. सोमदेव : एक राजनीतिक विचारक।
   डॉ० पी. एम. जैन, आगरा विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९६४ में पी-एच. डी. के लिए स्वीकृत। अप्रकाशित।
२. नीतिवाक्यामृत में राजनीतिक आदर्श एवं संस्थाएँ।
   डॉ० एम. एल. शर्मा, लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच. डी. के लिए स्वीकृत। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'नीतिवाक्यामृत में राजनीति' नाम से प्रकाशित।

जैन राजनीति पर एक स्वतन्त्र शोध प्रबन्ध भी लिखा गया, जिस पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५५ में लेखक श्री श्यामसिंह जैन (S. S. Jain) को पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की। यह शोध प्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित है।

(८) **आदिपुराण के विशेष सन्दर्भ**—जिनसेन (नवीं शती) कृत आदिपुराण में प्रतिपादित राजनीतिशास्त्र को डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने गुप्तवंशीय सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राज्य व्यवस्था से तुलनीय बताया है।[१८] जिनसेन राष्ट्रकूटों की राजनीति और शासन व्यवस्था से भी निकट से परिचित थे। इसलिए आदिपुराण में उसका समावेश भी स्वाभाविक है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आदिपुराण में प्रतिपादित राजनैतिक सिद्धान्त पौराणिक, गुप्तवंशीय तथा राष्ट्रकूट राजनीति का सम्मिलित रूप है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन राजनीति की दृष्टि से आदिपुराण के कतिपय सन्दर्भ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। वे इस प्रकार हैं—

राजा का वृत्त—जिनसेन ने राजा का वृत्त या धर्म पाँच प्रकार का बताया है[१९]—

१. कुलानुपालन।
२. मत्यनुपालन।
३. आत्मानुपालन।
४. प्रजानुपालन।
५. समंजसत्व।

जिनसेन ने इनका विस्तार से वर्णन किया है। कुलाम्नाय तथा कुलोचित समाचार का परिरक्षण कुलानुपालन है।[२०] लोक तथा परलोकार्थ के हिताहित का विवेक मत्यनुपालन है।[२१] इसका प्रयोग अविद्या के दूर करने से ही हो सकता है। इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी अपायों से आत्मा की रक्षा करना आत्मानुपालन है।[२२] विष और शस्त्र आदि से रक्षा लोकापाय रक्षा है। परलोक सम्बन्धी अपायों से बचने का एकमात्र साधन धर्म है।

जिनसेन ने लिखा है कि आत्मरक्षा करने के बाद राजा को प्रजानुपालन में प्रवृत्त होना चाहिए। यह राजाओं का मूलभूत गुण है।[२३] ग्वाले द्वारा गायों के रक्षण का दृष्टान्त देकर प्रजानुपालन की विस्तृत व्याख्या की गयी है।[२४]

जिनसेन के इस विवरण से ज्ञात होता है कि राजा को अपने बाह्य और आध्यात्मिक विकास के लिए सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए। आत्मिक विकास के उपरान्त ही वह उचित रूप से प्रजा के अनुपालन में प्रवृत्त हो सकता है।

समंजसत्व के अन्तर्गत दुष्टनिग्रह और शिष्ट अनुपालन आते हैं।[२५] जिनसेन का कहना है कि राजा को निग्रह योग्य शत्रु और पुत्र दोनों का समान भाव से निग्रह करना चाहिए।

राजा के स्वरूप और कर्तव्यों का उक्त विवरण जैन राजनीति की दृष्टि से एक आदर्श राजा या राज्य के प्रधान के व्यक्तित्व का निदर्शन है। जिसका स्वयं का व्यक्तित्व आदर्श हो, वही आदर्श राजा या राज्य का प्रधान हो सकता है। राज्यतन्त्र और गणतन्त्र दोनों ही दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है।

प्रजा के मन्तव्यों का मूल्य—राज्य के विभिन्न अंगों—अमात्य, पुरोहित आदि के माध्यम से प्रजा के मन्तव्यों का प्रशासन में मूल्यांकन राजतन्त्र में किया जाता है। जिनसेन ने एक स्थान पर बलवान् शत्रु के आक्रमण के समय वृद्धजनों की सम्मति लेने का स्पष्ट उल्लेख किया है।[२६] लिखा है कि यदि कोई बलवान् राजा अपने राज्य के सम्मुख आवे तो वृद्ध लोगों के साथ विचारकर उसे कुछ देकर उसके साथ सन्धि कर लेना चाहिए।

युद्ध का अहिंसक प्रतिरोध—जिनसेन युद्ध के पूर्ण विरोधी हैं क्योंकि युद्ध बहुत से लोगों के विनाश का कारण है। उसमें बहुत-सी हानियाँ हैं और भविष्य के लिए दुखदायी हैं। इसलिए कुछ देकर बलवान् शत्रु के साथ सन्धि कर लेना चाहिए।[२७]

कठोर दण्ड का निषेध—जिनसेन अत्यधिक कठोर दण्ड की सलाह नहीं देते। उनका कहना है कि जिस प्रकार यदि अपनी गायों के समूह में कोई गाय अपराध करती है तो उसका गोपालक उसे अंगछेदन आदि कठोर दण्ड नहीं देता प्रत्युत अनुरूप ही दण्ड देता है उसका नियन्त्रण करके उसकी रक्षा करता है, उसी प्रकार राजा को भी अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए।[२८]

(६) **सोमदेव सूरि का नीतिवाक्यामृत**[२९]—कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बाद सोमदेव सूरि का नीतिवाक्यामृत राजनीतिशास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ है। इसकी रचना सूत्रों में की गयी है। पूरा ग्रन्थ बत्तीस समुद्देशों में विभाजित है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र की अपेक्षा संक्षिप्त, सरल और सहजग्राह्य होने के कारण यह ग्रन्थ दशवीं शती से लेकर दीर्घावधि तक राजाओं का सच्चा पथ-प्रदर्शक रहा है।

सोमदेव ने अपने काव्य ग्रन्थ यशस्तिलक में भी राजनीति का विस्तार से वर्णन किया है किन्तु नीतिवाक्यामृत इस विषय का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। जिस समय इस ग्रन्थ की रचना हुई, उस समय इसकी अत्यधिक आवश्यकता थी। हर्षवर्धन के बाद भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था। राजा लोग अपने-अपने राज्यों की सीमा विस्तार के लिए अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे थे। इस अव्यवस्था का लाभ उठाकर यवनों ने भारत पर अधिकार कर लिया। ऐसे अवसर पर सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत की रचना करके भारतीय नरेशों का पथ प्रदर्शन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीतिवाक्यामृत में प्रतिपादित राजनीति समग्र रूप में प्राचीन भारतीय राजनीति का एक आदर्श रूप है। इसे जैन राजनीति मानने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं हो सकता। सोमदेव स्वयं जैन साधु थे। इसलिए उन्होंने अपने ग्रन्थ में जैन-धर्म के उच्च आदर्शों का पूरा ध्यान रखा है।

नीतिवाक्यामृत में शासन व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले सभी पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। राज्य के सप्तांग—स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, बल एवं मित्र के लक्षणों पर विशद प्रकाश डाला गया है। राजधर्म की भी विस्तार से व्याख्या-विवेचना की गयी है।

सोमदेव ने धर्मनीति, अर्थनीति और समाजनीति को राजनीति का अभिन्न अंग माना है। इसलिए राजनीति के साथ इनका भी उन्होंने विशद विवेचन किया है! डॉ० शर्मा ने लिखा है कि नीतिवाक्यामृत "मानव-जीवन का विज्ञान और दर्शन है। यह वास्तव में प्राचीन नीति साहित्य का सारभूत अमृत है। मनुष्य मात्र को अपनी-अपनी मर्यादा में स्थिर रखने वाले राज्य प्रशासन एवं उसे पल्लवित, संवर्धित एवं सुरक्षित रखने वाले राजनीतिक तत्त्वों का इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है।"[१०]

नीतिवाक्यामृत के टीकाकार ने ग्रन्थ के नामकरण के सम्बन्ध में लिखा है कि 'इस ग्रन्थ के अमृत तुल्य वाक्य-समूह विजयलक्ष्मी के इच्छुक राजा की अनेक राजनीतिक विषयों, सन्धि, विग्रह, मान, आसन आदि में उत्पन्न हुई संदेह रूप महामूर्च्छा का विनाश करने वाले हैं, इसलिए इसका नाम नीतिवाक्यामृत रखा गया है।'[११]

नीतिवाक्यामृत के कतिपय विशेष सन्दर्भ

राज्य का महत्त्व—नीतिवाक्यामृत के मंगलसूत्र में राज्य को नमस्कार किया गया—

"अथ धर्मार्थकामफलाय राज्याय नमः।"

राज्य धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों की सिद्धि का अमोघ साधन है। इसलिए उसे नमस्कार है। राज्य के लिए दशवीं शताब्दी में इतना महत्त्व देने वाला यह एक मात्र उदाहरण है। सोमदेव जैसे जैन साधु की लेखनी से प्रसूत होने के कारण इसका और भी अधिक महत्व है। सोमदेव को धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक नीति के सम्मिश्रित रूप में तीर्थंकर ऋषभदेव की राजनीति का जो दाय परम्परा से प्राप्त हुआ था, उसे उन्होंने इस रूप में प्रस्तुत कर दिया।

धर्मनिरपेक्षता—आज से एक हजार वर्ष पूर्व धार्मिक संघर्ष के उस युग में धर्मनिरपेक्षता की बात सोमदेव जैसा समर्थ विचारक ही कह सकता था। नीतिवाक्यामृत का प्रथम समुद्देश धर्मसमुद्देश है, धर्मनिरपेक्षता के सम्बन्ध में उनकी नीति का स्पष्ट ज्ञान होता है। वे कहते हैं कि जिसकी जिस देवता में श्रद्धा हो, वह उसकी प्रतिष्ठा करे। (७/१७)

राज्य का अधिकारी—सोमदेव ने क्रम और विक्रम दोनों को राज्य का मेल बताया है।[१२] क्रमागत राज्य भी विक्रम के अभाव में नष्ट हो जाता है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि भूमि पर कुलागत अधिकार किसी का नहीं है, किन्तु वसुन्धरा वीरों के द्वारा भोग्य है।[१३]

निरंकुश शासन का निषेध—राजतन्त्र में भी सोमदेव निरंकुश शासन के हिमायती नहीं हैं। उनके अनुसार राजा को मन्त्रि-परिषद् के मन्तव्यों की कदापि अवहेलना नहीं करनी चाहिए। यदि वह मन्त्रियों की उपेक्षा करता है तो वह राजा कहलाने के योग्य नहीं है।[१४]

लोक हितकारी राज्य—सोमदेव ने लोक हितकारी राज्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। समृद्ध राष्ट्र की कल्पना उनका आदर्श है। पशु, धान्य, हिरण्य आदि सम्पत्ति से जो सुशोभित हो, वह राष्ट्र है। कृषि पशुपालन, व्यापार, वाणिज्य आदि में किस प्रकार प्रगति हो सकती है, इस विषय पर उन्होंने पर्याप्त प्रकाश डाला है। धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थों को समरूप से सेवन करना चाहिए।[१५]

लोकनीति राजनीति—सोमदेव ने लोकनीति और राजनीति का समन्वय किया है। समाज की उन्नति में ही राष्ट्र की उन्नति है। लोक व्यवहार की दृष्टि से जो व्यवस्था महत्वपूर्ण है, उसका पूर्ण विवेचन सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत में किया है।

वर्ग-भेदहीन राजनीति—सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत में यद्यपि वर्णाश्रम व्यवस्था का वर्णन किया है किन्तु इस विषय में उनके विचार जैन परम्परा के अनुरूप बहुत उदार हैं। उन्होंने लिखा है कि जिस प्रकार सूर्य का दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी कर सकते हैं, उसी प्रकार धर्म सभी के लिए है।[३६] उनका कहना है कि आचार की पवित्रता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जिसका आचार शुद्ध है, जिसके घर के पात्र पवित्र हैं तथा जो शरीर से स्वच्छ है, ऐसा शूद्र भी देव, द्विज और तपस्वियों की सेवा का अधिकारी है।[३७] सदाचार का पालन करना सभी का समाजधर्म है।[३८]

राष्ट्रीयता का महत्त्व—सोमदेव ने लिखा है कि राजा को जहाँ तक सम्भव हो राज्य के उच्च पदों पर स्वदेशवासियों की ही नियुक्ति करनी चाहिए।[३९] स्वदेशवासी में अपने राष्ट्र के प्रति अधिक लगाव होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नीतिवाक्यामृत जैन राजनीति का एक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।

(१०) **निष्कर्ष**—संक्षेप में जैन राजनीति, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक नीति के साथ राजनीति का एक सम्मिलित रूप है। धर्म को राजनीति से अलग करने पर राष्ट्रीय चरित्र के विकास का स्पष्ट आधार शेष नहीं रहता। समाजनीति की उपेक्षा करने पर सामाजिक जीवन के उत्थान की संभावनाएँ कम हो जाती हैं और आर्थिक नीति पर ध्यान न देने की स्थिति में समाज और राज्य के विकास की रीढ़ ही दुर्बल हो जाती है। जैन राजनीति लौकिक और आध्यात्मिक समग्र विकास पर बल देती है। भौतिकवाद के इस युग में मानव व्यक्तित्व और राष्ट्रीय चरित्र के विकास के लिए जैन राजनीति का विशेष अध्ययन-अनुसंधान करके उसे विश्व के राजनैतिक क्षितिज पर प्रस्तुत करने की महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ एवं सन्दर्भ-स्थान

१ **यतिवृषभ**—तिलोय-पण्णत्ति, जीवराज जैन ग्रंथमाला, शोलापुर, द्वि० सं० १९५६। महाधिकार चार।
जमला जमलपसूया ॥३३४॥
ते जुगलधम्मजुत्ता परिवारा णत्ति तक्काले ॥३४०॥
गामणयरादि सव्वं ण होदि ते होंति सव्व कप्पतरू।
णियणियमणसंकप्पियवत्थूणिं देंति जुगलाणं ॥३४१॥
पाणंगतूरियंगा भूसणवत्थंगभोयणंगा य।
आलयदीवियभायणमालातेजंगआदि कप्पतरू ॥३४२॥

२ **जिनसेन**—आदिपुराण भाग १, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी, द्वि० सं० १९६३। पर्व तीन।
तिलोय-पण्णत्ति, महाधिकार चार।

३ प्रजानां जीवनोपायमननान्मनवो मतः।
आर्याणां कुलसंस्त्यायकृतेः कुलकरा इमे॥
कुलानां धारणादेते मताः कुलधरा इति।
युगादिपुरुषाः प्रोक्ताः युगादौ प्रभविष्णवः॥ —**आदिपुराण** ३।२११, २१२

४ **डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री**—आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रंथमाला वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६८, पृ० १३४।

५ वही, पृ० १३६। ६ वही, पृ० १३६। ७ (क) वही, पृ० १३६-१३७।
(ख) आचार्य हस्तिमल—जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग १, जैन इतिहास समिति, जयपुर, १९७१, पृ० १-८।

८ आवश्यकनिर्युक्ति—हक्कारे मक्कारे धिक्कारे चैव।

९ आदि पुराण ३/२१४-२१५: तत्राद्यैः पञ्चभिर्नृणां कुलकृद्भिः कृतागसाम्।
हाकारलक्षणो दण्डः समवस्थापितस्तदा॥
हामाकारश्च दण्डोऽन्यैः पञ्चभिः संप्रवर्तितः।
पञ्चभिस्तु ततः शेषैर्हामाधिक्कारलक्षणः॥

१० आदिपुराण १६।१२३-१३४: नाभिराजमुपासेदुः प्रजा जीवितकाम्यया॥
नाभिराजाज्ञया स्रष्टुस्ततोऽन्तिकमुपाययुः॥

११ वही, १५।१७२: तदास्याविरभूद् द्यावा पृथिव्यो प्राभवं महत्।
आधिराज्येऽभिषिक्तस्य सुरैरागत्य सत्वरम्॥

१२ वही, १६।२३२—नाभिराजः स्वहस्तेन मौलिमारोपयत् प्रभोः।

१३ जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग १, पृ० २०।

१४ आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २ से १४।

१५ उत्तराध्ययनसूत्र, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, १९७२। पुरिमा उज्जुजडा॥ अध्ययन २३, गाथा २६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६ विस्तार के लिए दृष्टव्य—आदिपुराण, पर्व ३५, ३६।
१७ सुत्तपिटके दीघनिकायपालि, महावग्ग, बिहार शासन द्वारा प्रकाशित, १९५८। महापरिनिव्वान सुत्त ४, पृ० ५९।
वज्जीनं सत्त अपरिहानिया धम्मा।
(१) वज्जी अभिण्हं सन्निपाता सन्निपातबहुला।
(२) वज्जी समग्गा सन्निपतन्ति समग्गा वुट्ठहन्ति।
समग्गा वज्जिकरणीयानि करोन्ति॥
(३) वज्जी अपञ्ञत्तं न पञ्ञापेन्ति पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दन्ति, यथा पञ्ञत्ते पोराणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तन्ती।
(४) वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका ते सक्करोन्ति गरूं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेसं च सोतब्बं मञ्ञन्ती।
(५) वज्जी या ता कुलित्थियो कुलकुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेन्ती।
(६) वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जिचेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च तानि सक्करोन्ति, गरूं करोन्ति मानेन्ति, पूजेन्ति, तेसिं च दिन्नपुब्बं कतपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहापेन्ती।
(७) वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका रक्खावरणगुत्ति सुसंविहिता, किन्ति अनागता च अरहन्तो विजितं आगच्छेय्युं, आगता च अरहन्तो विजिते फासु विहरेय्युं।
१८ आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ३६६।
१९ **आदिपुराण भाग १, ४२/४** : तच्चेदं कुलमत्यात्मप्रजानामनुपालनम्।
समंजसत्वं चेत्मेवमुद्दिष्टं पञ्चभेदभाक्॥
२० **वही, ४२/५/** : कुलानुपालनं तत्र कुलाम्नायानुरक्षणम्।
कुलोचितसमाचारपरिरक्षणलक्षणम्॥
२१ **वही, ४२/३१/३२** : कुलानुपालनं प्रोक्तं वक्ष्ये मत्यनुपालनम्।
मतिर्हिताहितज्ञानमात्रिकामुत्रिकार्थयोः॥
तत्पालनं कथं स्याच्चेदविद्यापरिवर्जनात्।
२२ **वही, ४२/११३** : अत्रिकामुत्रिकापायात् परिरक्षणमात्मनः।
आत्मानुपालनं नाम तदिदानीं विवृण्महे॥
२३ **वही, ४२/१३७** : कृतात्मरक्षणश्चैव प्रजानामनुपालने।
राजा यत्नं प्रकुर्वीत राज्ञां मौलो ह्ययं गुणः॥
२४ **वही, ४२/१३९ से १९७ तक** : गोपालको यथा यत्नाद् गाः संरक्षत्यतन्द्रितः।
क्ष्मापालश्च यत्नेन तथा रक्षेन्निजाः प्रजाः॥
२५ **वही, ४२/१९९** : राजा चित्तं समाधाय यत् कुर्याद् दुष्टनिग्रहम्।
शिष्टानुपालनं चैव तत्सामंजस्यमुच्यते॥
२६ **वही, ४२/१९५** : भूपोऽप्येवं बली कश्चित् स्वराष्ट्रं यद्यभिद्रवेत्।
तदा वृद्धैः समालोच्य संदध्यात् पणबन्धतः॥
२७ **वही, ४२/१९६** : २८ **वही, ४२/१४०-१४२**।
२९ नीतिवाक्यामृत संस्कृत टीका के साथ माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला में तथा हिन्दी अनुवाद के साथ वाराणसी से प्रकाशित हुआ है।
३० डॉ. एम. एल. शर्मा—नीतिवाक्यामृत में राजनीति, पृ० २४।
३१ नीतिवाक्यामृत, टीका पृ० २।
३२ वही, ५/२७/ राज्यस्य मूलं क्रमो विक्रमश्च।
३३ वही २९/६९/ नहि कुलागता कस्यापि भूमिः किन्तु वीरभोग्या वसुन्धरा।
३४ वही, १०/५८/ स खलु नो राजा यो मन्त्रिणोऽतिक्रम्य वर्तेत।
३५ वही, ३/३/
३६ वही ७/१४ : आदित्यावलोकनवत् धर्मः खलु सर्वसाधारणः।
३७ वही, ७/१२/ ३८ वही, ७/१३/ ३९ वही, १०/६/

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org